चतुर्थ अध्याय

जगदीश गुप्त के खण्डकाव्य – बुद्ध चरित्र

चतुर्थ अध्याय

जगदीश गुप्त के खण्डकाव्य – बुध्द चरित्र

नयी कविता आन्दोलन के अग्रणी कवि, सूत्रधार, चिंतक तथा चित्रकार एवं कला समीक्षक डा. जगदीश गुप्त की अभिनव कृति–रचना–क्रम और रचना दृष्टि दोनों ही संदर्भो में गोपा–गौतम उनके स्वरचित रेखांकनों से युक्त यशोधरा और गौतम के अंतरंग जीवन के सर्वथा अछूते प्रसंगो को आधुनिक दृष्टि से मनोविज्ञान की तर्कसंगत यथार्थ मनोभूमिपर सृजनशील कल्पना के सहारे प्रस्तुत करनेवाला यह "गोपा–गौतम" एक नूतन संवाद–काव्य है।[1]

बुध्द के जीवन को काव्य का विषय बनाने के पीछे मेरे मन में अनेक प्रकार के प्रेरणा सूत्र सक्रिय रहे। "युग्म" में समाहित वृत्ति की विरागात्मक परिणति, "शम्बूक" के जातिवर्ण विरोधी उदार वैचारिक आधार को और अधिक समृध्द एवं प्रशस्त करने की भावना, अर्थकेन्द्रित भौतिकवादी जीवन–दर्शन की अपर्याप्तता और संकीर्णता का बोध, वैज्ञानिक युग में भी आध्यात्मिक आयाम की अपेक्षा, भोगवाद की बढ़ती प्रवृत्ति के बीच त्याग की गरिमा का पुर्नवलोकन मानवीय करूणा और उसकी विश्वव्यापी प्रतीति की सार्थकता तथा कला के क्षेत्र में अजस्य सौन्दर्यात्मक प्रतिमूर्तन की मूल प्रेरणा का आनयन और अन्त में मनुष्यता को बुध्दत्व के चरम उत्कर्ष तक पहुँचानेवाले कर्मनिष्ठ तेजस्वी चिन्तक के प्रती एक भारतीय के नाते प्रणाम निवेदन। इस रचना को सम्भव बनाने में इन सभी का योग लक्षित किया जा सकता हे। फिर इधर मृत्यू के निकट तक पहुँचा देनेवाली बीमारी का अस्पताली अनुभव और पुर्नजीवन देनेवाले स्नेह सद्भाव की गरिमामयी चेतना भी विस्मरणीय नहीं। मुझे लगा कहीं मुझमें भी किसी बोधिसत्व की छाया सन्निहित है, और वही बुध्द–चरित को आत्मसात एवं अभिव्यक्त करने के लिए मेरे अन्तःकरण को प्रेरित कर रही है। बिना किसी नये पुराने काव्य–रूप का आग्रह किए ऐसी सात्विक प्रेरणा को प्रस्फुटित होने देना मैंने अपना कवि–धर्म माना और सारा कवि–कर्म उसके प्रति समर्पित कर दिया गया "बोधिवृक्ष" खण्डकाव्य है।[2] बहुछन्दात्मक और मुक्त छन्दात्मक रूप में डा.जगदीश गुप्तजी ने "बोधिवृक्ष" में प्रस्तुत किया है।

डा. जगदीश गुप्तजी ने "बोधिवृक्ष" और "गोपा--गौतम" इन दो खण्डकाव्यों में गौतम के या बुध्द के चरित्र का उद्घाटन किया है। वैसे तो इन दो काव्यों में शुध्दोदन, महाप्रजापति, आनन्द, देवदत्त, यशोधरा, बिम्बसार, अंगुलिमाल प्रसेनजित, सुजाता, कृष्णा आदि विविध पात्रों का अंकन है। ये सभी पात्र अपनी--अपनी विशेषताओं के साथ यहाँ अवतीर्ण हुए हैं, किन्तु इन समस्त पात्रों में से दो ही प्रमुख पात्र हैं -- गोपा--गौतम जिनका यहाँ विशद् वर्णन किया गया है। इनमें से गौतम को कवि ने राजा के रूप में चित्रित न करके एक सामान्य आदमी के रूप में वर्णित किया है।

1. **राजा होकर भी सामान्य व्यक्ति की तरह जीनेवाला :--**

ईसापूर्व 623 में बुध्द का जन्म हुआ, उसके पिता शुध्दोदन कोशल के अधीन सूर्यवंशी राजा थे जो शाक्य गणतन्त्र के प्रमुख शासक थे। उसकी माता महामाया कपिलवस्तु से अपने मायके देवदह जा रही थी जब लुम्बिनी वन में सुपुष्पित दो शाल वृक्षों के बीच में बुध्द का जन्म हुआ।[3] राजा का पुत्र राजा ही होता है तो गौतम या सिध्दार्थ पर भी राजा होने का अधिकार मिलता है। लेकिन बचपन से ही गौतम एकांत प्रिय, गम्भीर, और मननशील थे। यह देखकर पिता ने उसके लिए तीन ऋतुओं में विलास--योग्य तीन प्रासाद बनवा दिये। यशोधरा से उनका विवाह करा दिया गया। कई प्रकार के नृत्य--संगीत का प्रबन्ध करा दिया। परन्तु होनी कुछ और ही थी। कोमल हृदय राजपुत्र ने जरा, रोग और एक मृत व्यक्ति को देखा और बाद में एक विरक्त संन्यासी को भी देखा। उनके मनमें दुःख का कारण जानने की इच्छा उत्पन्न हुई। गौतम को यशोधरा से एक पुत्र भी हुआ। यह समाचार सुनकर गौतम ने कहा कि एक राहुल (बाधा)पैदा हुआ है। शुध्दोदन ने सोचा कि शायद इसी कारण संसार में बुध्द का मन लगा रहेगा। परन्तु एक मध्यरात्रि को जब नर्तिकाएँ बुध्द के मन को बहलाने का यत्न कर रही थी, गौतम का मन उचाट हो गया। वह अपनी पत्नी और बच्चे को सोता हुआछोडकर, जिससे किसी को पता न चले ऐसे चुपचाप, घोडे पर बैठकर जंगल की ओर चला गया। वहाँ उसने अपने राजसी परिधान छोड़ दिये, तलवार से अपने लम्बे बाल काट डाले और वह विरक्त बन गये।

एक मानव की तरह ही वह एक छोटे से गणराज्य के यहाँ पैदा हुए, मानव की तरह ही उन्हें जिज्ञासाएं और शंकाएं हुई, जिनका उन्होंने समाधान भी मनुष्य की तरह ही किया और फिर जीवन के सत्यों का ज्ञान प्राप्त करने के बाद अपने जीवन के शेष वर्ष उन्होंने एक मनुष्य की तरह एक स्थान से दूसरे स्थान पर घुमते हुए और लोगों को अपने विचार समझाते हुए व्यतीत किये। अन्त

में उनकी मृत्यू भी एक मनुष्य की तरह ही रोग से किन्तु गम्भीर, अपराजित शान्ति की अवस्था में हुई। अपने जीवन की सभी क्रियाओं में बुध्द मानव थे। उनका जीवन आदि से लेकर अन्त तक एक मानव की जीवन है।

2. **आर्थिक संपन्नता की लालसा से दूर बुध्द :–**

गौतम का जन्म राजकुल में हुआ था इसलिए उनको आर्थिक सुबत्ता बहुत थी। किसी भी प्रकार की कमतरता या कमी उन्हें नही थीं लेकिन गौतम ने अर्थकेन्द्रित राजस जीवन को त्याग कर ज्ञान प्राप्ती के लिए वन में चले गये। गौतम ने धन को साधन मानने के बजाय साध्य माना है। गौतम ने भिक्षा के रूप में भी ज्यादा धन की प्राप्ती हुई तो वे उपेक्षित धन का आग्रह करके बचा हुआ अनाज वापस कर देते थे।

राजा बिम्बसार की गौतम के परिवार के साथ दृढ़ मित्रता थी। गौतम जरा, रोग और मृत्यू दर्शन से अनुप्रेरित मान लेने पर संसार से उनकी उत्कट विरक्ति का भाव जागृत होकर वे अपना राजवैभव त्याग कर चले गये थे। उसका पता बिम्बसार को लगने से वह गौतम को उनके मार्ग से रोकने का प्रयत्न करते हैं और अपना राज्य देने का भी वचन देते है लेकिन त्यागी गौतम इस लालसा को शरण नहीं गये। जैसे कि –

बिम्बसार हैं आप यशस्वी।
मैं त्यागी हूँ और तपस्वी
नहीं चाहिए राज्य आपका,
मैं त्राता हूँ, त्रात नहीं हूँ।[4]

कुनबी की कन्या सुजाता ने अपनी पूर्णा दासी के साथ परिक्रमा कर वटदेवता को पायस का भोजन स्वर्ण थाल में रखकर दिया तो उन्होंने पायस का आस्वाद कर स्वर्ण थाल नदी में फेंक दिया। उससे पता चलता है कि गौतम को आर्थिक लालासा होती तो वह थाली अपने पास रख देते उसे नदी में बहा नही देते। जैसे कि –

उठे स्वयं फिर कर से
पायस–पात्र उठाया

ग्रहण किया, जल पिया।
स्वर्ण–थाल वह, फेंक बहाया।[5]

3. <u>पंचशील की भावना के प्रती आत्मीयता :–</u>

भगवान बुध्द ने पहला प्रवचन देने के बाद उनके धम्म की महत्ती स्पष्ट करने की अर्चना की तो उनके प्रमुख शिष्य आनंद ने विशुध्दी मार्ग समझाया, उन्होंने कहा कि – उत्तम मनुज बनने के लिए पंचशील तत्व का पालन करना चाहिए। वह पंचशील तत्व इस प्रकार है –

1. किसी भी प्राणी की हत्या या उसे इजा मत करना।
2. दूसरों की वस्तू पर अपना अधिकार न कहना। चोरी न करना।
3. व्यभिचार न करना।
4. असत्य न बोलना।
5. मादक पेय ग्रहण न करना।

गौतम जो कहते है वे करके ही दिखाई देते हैं। उन्होंने जो कुछ लोगों को अपना ज्ञान बताया, उपदेश दिये वह खुद पर और अपने शिष्यों पर अवलंब कर देते थे। उनके कथनी और करनी में फर्क नहीं था। लेकिन आज के समाज में कितने ऐसे पाखंडी है कि भाषण में समाज उध्दार का नारा लगाते हैं, समाजहित योजना बतायी जाती है लेकिन कार्यवाही कुछ नहीं होती तो धिक्कार ही मिल जाता है। आज आम आदमी की दुनिया नहीं रही। सब अमीर, साहूकार, सूदखोरों, ठेकदारों का कार्य चलता है। अमीर अधिक अमीर बनता जा रहा है और गरीब अधिक गरीब बनता जा रहा है।

ख्रिस्तपूर्व छठे शतक के गौतम बुध्द द्वारा बताये गये पंचशील तत्व की भावना को जगाकर तथा उपेक्षाग्रस्त अन्त्यजों को अपनाकर देश–विदेश की अनेक जीवन्त समस्याओं के समाधान में आज भी वह सहायक हो रहे हैं। गौतम के चरित में भी इन पंचतत्व का पालन कूट–कूट कर भरा हुआ दिखाई देता है। देवदत्त द्वारा हंस मारा जाता है तो वह हंस रक्त से लथ–पथ होकर भूमिपर गिर जाता है तो गौतम उसे अपनाते है उसे जल आदि देकर प्यार दुलारकर हंस के प्राण बचाते है। इससे प्राणी हत्या न करना यह पहला पंचशील तत्व हमारे सामने प्रकट होता है। देवदत्त को उसका आखेटक होकर भी उन्हें नहीं देते उचित न्याय प्राप्त करने के लिए संथागार चले जाते है पर प्राणघातक से प्राणत्राता श्रेष्ठ होने के कारण सिध्दार्थ के पक्ष में ही विजय साबित होता है। जैसे –

एक बुध्द स्वर गूँजा था अधिकार हंस यदि मृत हो जाता।
सदा श्रेष्ठ माना जाता है दुनिया में घातक से त्राता।[6]

4. **उपेक्षाग्रस्त लोगों के प्रती प्रेरणा :-**

मगध देश के जवान, सरदार पुत्र गौतम के शिष्य बन गये थे इसलिए अन्य लोग क्रोधित हो गये थे। वे गौतम पर सुखी संसार उद्ध्वस्त करनेवाला, शादी-शुदा औरत का सुहाग छिननेवाले आदि आरोप लगाते थे। गौतम के बारे में मगध नगर में असंतोष फैलाने लगे। यह वार्ता गौतम को उनके शिष्यों ने कहीं तो गौतम ने उनसे प्रत्युत्तर किया कि जो लोग तथागत है वह सध्दर्म मार्ग का अवलंब करते है तो ज्ञानी पुरूष अन्य लोगों को सन्मार्ग के पथ पर चलना सिखाता है तो उसमें बुराई कौनसी है? गौतम के धम्म में किसी भी प्रकार की जबरदस्ती को जगह नहीं हैं। गृहत्याग करना या गृहस्थ होकर परिव्रज्या लेना खुद पर निर्धारित है। जब भिक्खूने समीक्षकों को तथागत के यह शब्द वर्णित किये तब उन लोगों के समझ में आया कि शाक्यपुत्र लोगों को सन्मार्ग के पथपर ही चलना सिखाता है। कुमार्ग के पथ पर नहीं, तब उनके मन का लोभ, राग को स्थिरता मिली।

जैन तीर्थकोने स्त्री प्राणघात का आरोप गौतम के शिष्योंपर लगाया था ताकि अन्य लोग जैन तीर्थक के साथ आदरता से पेश आये। गौतम का प्रभाव तीर्थकों पर अधिक पड़ने के कारण अन्य जैन तीर्थक बुरे आरोपों का आयोजन करने लगे थे। एक सुंदरी जेतवन में जाती थी, वह जेतवन से आते वक्त अन्य लोग उसकी पूछताछ करते तो वह गौतम की गन्धकुटी का नाम बता देती थी। कुछ दिन पश्चात तीर्थकोने उसको मार डाला और गन्ध कुटी के पास फेंक दिया ताकि गौतम और अन्य लोगों का बुरे कर्म का शक हो जाय। एक दिन उस सुंदरी को मारने के लिए जिन्होंने पैसे लिये थे उनमें आपस में झगड़ा होने के कारण सरकारी अधिकारी द्वारा वे पकड़े जाते है तो उन्होंने उस सुंदरी हत्या का गुनाह कबूल किया। जिसकी प्रेरणा से यह हत्या कि गयी थी वे लोग प्रवृत्त हुये और उन तीर्थकों से छुट्टी ले ली। जैन तीर्थक ने अनैतिकता का आरोप भी गौतम पर लगाया था लेकिन अपने आप सच्चाई सामने आयी वह आरोप नष्ट हो गया। उस चिंचा नामक स्त्री को लोगों ने डंडे से मारकर बाहर निकाला।

इससे गौतम बुध्द की मूलभूत जीवन–दृष्टि की गहराई एवं व्यापकता नजर आती है और वह मानव के प्रति संतुलित दृष्टिकोण अपनाने के विचार से प्रेरित हो गयी है।

5. **देश–विदेश की समस्याओंसे तादात्म्य :–**

बुध्द के प्रभाव से यज्ञ–पशु पिष्ट–पशु बन गए। रक्तमय बलिप्रथा वैष्णव प्रभाव ग्रहण करती हुई भक्ति और अनुरक्ति में परिणत हो गयी करूणा से युक्त मानवता और समता को सर्वोपरि स्थान मिला। जन्म से जाति–वर्ण की मान्यता खंडित हो गयी। बौध्द मत ने भारतीय संस्कृति के विकास में आत्मा और ईश्वर का प्रतिवाद करके तथा विज्ञानवाद और प्रज्ञावाद का प्रसार करके अभूतपूर्व योग दिया जो आज भी महत्व रखता है। श्रीलंका, ब्रम्हदेश, और थाईलैंड में बुध्द का ध्यानी, योगी रूप मान्य हुआ तथा नेपाल, कोरिया, चीन और जापान में उनके बहुजन–हितकारी करूणामय स्वरूप की अर्चना की गई, जो आज भी सजीव है, भले ही उसमें अनेक प्रकार की विसंगतियाँ और विकृतियाँ उत्पन्न हो गयी हो। मानव स्वभाव को बुध्द ने आमूल परिवर्तनशील माना। उनका निवारण तत्वतः जीवन के निःशेष होने का बोधक नहीं है। वह केवल वासनाक्षय का द्योतक है और आगे चलकर जन्मान्तरवाद में वासना के परिष्करण का पर्याय बन गया। मन्त्रयान और तन्त्रयान की गुहय साधनाओं ने उसे विपथ भी किया पर निम्न वर्ग का उत्थान तो भी उसके माध्यम से होता रहा।

गौतम बुध्द की वाणी उनके मृत्यू के साथ नष्ट नहीं हुई तो गौतम के मृत्यू से पहले ही उनका उपदेश देश की एक शक्ति बनी हुयी थी और आज भी उसके मृत्यू के पश्चात ढ़ाई हजार बरस के बाद उनके उपदेश की याद आती है। सम्राट अशोक कि प्रेरणा से परदेश में उनका धर्मप्रसार हुआ दिखाई देता था। अशोक का साम्राज्य जग के पूरब भाग में ब्रम्हदेश, इंडोनेशिया, चीन तक फैला हुआ था। दक्षिण से श्रीलंका में बौध्द धर्म एक राष्ट्रीय धर्म बन गया । ततपश्चात उत्तर की ओर बौध्द धर्म का प्रसार हुआ और पूरब में तिब्बत, चीन व जापान तक बौध्द धर्म का प्रसार हुआ। बडे बडे देश में भी बुध्दम् शरणम् ..... इस पवित्र मन्त्र का स्वर की गुंजाईश सुनाई देने लगी।

बुध्दम् शरणम् गच्छामि ।
धम्मम् शरणम् गच्छामि।
संघम् शरणम् गच्छामि।[7]

भगवान बुध्द का जन्म दो हजार पाँच सौ वर्ष के पूर्व में हुआ परंतु आधुनिक विचारको और शास्त्रज्ञों में भी गौतम बुध्द के धर्म के बारे में उच्च विचार पाये जाते है। उनकी सहानुभूति भी मिलती है। और बौध्द धर्म का वे गुनगान कर उसे श्रेष्ठ बताते है। गौतम को पूजनीय मानते है। डा.रंजन रॉय, मॅक्सवेल, श्री.ई.जी. टेलर आदि ग्रंथकर्ताओं ने बौध्द धर्मपर ग्रंथ लिखकर बौध्द धर्म से तादात्म्य किया है। प्रा.ड्वाईट गोडार्ड तो विश्व के सभी धर्मसंस्थापकों में भगवान बुध्द को महान धर्मसंस्थापक मानते है कि उन्होंने ही खुद की मुक्ती साध्य करते करते मानवी सामर्थ्य की महती पहचान सके हैं।

6. <u>आध्यात्मिकता के प्रती दृष्टि :–</u>

आध्यात्मिक योन आत्मा और परमात्मा संबंधीत विचार। भगवान बुध्द आत्मा का स्वतंत्र अस्तित्व नहीं मानते। बुध्द पुर्नजन्म को मानते हैं। भगवान बुध्द के मतानुसार मानवी अस्तित्व के चार घटक होते है – पृथ्वी, आप, तेज, और वायु। सवाल यह है कि मानवी शरीर मृत होने के बाद इन चार पदार्थो का क्या होता है ? मृत शरीर के साथ वह भी मृत हो जाते है क्या ? तो कुछ लोग "हाँ" बोलते है लेकिन बुध्द "नहीं" कहते हैं। वह कहते है कि वे घटक पदार्थ आसमान में जो समान पदार्थ सामूहिक रूप में स्थित है उसमें वह विलीन हो जाते है। जब वह आसमान में घूमनेवाले समूह को मिल जाते है, तब एक नया जन्म उदयास आता हैं। इसप्रकार भगवान बुध्द के अनुसार नये जन्म के घटक एक मृत शरीर के भी हो सकते है ऐसा मानते है। इससे यह स्पष्ट होता है कि मानवी देह मृत होता है लेकिन उसके भौतिक घटक पदार्थ चिरंतन शाश्वत रहते है।

भगवान बुध्द ने आत्मा और ईश्वर का प्रतिवाद करे विज्ञानवाद और प्रज्ञावाद का प्रसार करने का प्रयास किया है। भगवान बुध्द ने आत्मा और परमात्मा के बारे में कुछ नहीं बताया उन्होंने धम्म को ही श्रेष्ठ माना है। धम्म में ईश्वर को स्थान नहीं है। नीति धम्म का एक सार है। उसके बिना धम्म नहीं के बराबर है। धम्म में प्रार्थना, तीर्थयात्रा , कर्मकाण्ड , विधि अथवा यज्ञ को जगह नहीं। नीति का उगम मानव का मानव पर प्रेम करने से होता है। इसके लिए ईश्वरी आज्ञा

की कोई जरूरत नहीं ईश्वर को संतुष्ट रखने के लिए मनुष्य ने नीतिवान बनना नहीं तो स्वहित के लिए मनुष्य ने मनुष्य पर प्रेम करना चाहिए। इस प्रकार गौतम बुध्द मनुष्य को ही सर्वश्रेष्ठ मानते है। तो हर एक ने उसके साथ अच्छाईसे ही पेश आना चाहिए। याने आदमी के साथ आदमी जैसा ही बर्ताव करना आवश्यक है।

ईश्वर और आत्मा के लिए बौध्द धर्म में कोई स्थान नहीं है। भगवान बुध्द ने कहा है कि संसार में सभी जगह दुख ही दुख है, 90 प्रतिशत लोग दुखी, पीडित है। दुःख से पीडित गरीब लोगों का उध्दार करना ही बौध्द धर्म का मुख्य ध्येय है। कार्ल मार्क्स ने भगवान बुध्द से ज्यादा कुछ भी नहीं कहा है। भगवान बुध्द ने जो कुछ कहा है वह सब सरल और सीधा है।[8]

7. <u>त्यागमय जीवन :–</u>

डा.जगदीश गुप्तजी ने "बोधिवृक्ष" और "गोपा–गौतम" इन दो खण्डकाव्यों में गौतम के त्यागमय जीवन का चरित्र इसप्रकार वर्णित किया है – प्रचलित मान्यता के अनुसार गौतम के महाभिनिष्क्रमण को अनुभव त्रय जरा, रोग और मृत्यू के दर्शन से अनुप्रेरित मान लेने पर संसार से उनकी उत्कट विरक्ति का कारण नहीं मानते। विशेष रूप से ग्राहस्थिक जीवन से व्यक्तिगत विमुखता की गहरी अनुभूति और जातक साहित्य में नारी निन्दा की पराकाष्ठा की –

"बज्झित्थियो नात्थि इत्थीसु सच्चं।"[9]

(इसका अर्थ यह है कि स्त्रियाँ बाध्य है, क्योंकि उनमें सत्य नहीं होता।) यह सोचने के लिए बाध्य कर देती है कि आखिर ऐसा कौनसा कारण है कि गौतम विरक्त हो गये। डा.जगदीश गुप्तजी कहते है कि कहीं गौतम के दाम्पत्य जीवन में ही तो ऐसी फाँस नहीं है जिसके कारण गौतम ग्राहस्थिक जीवन से विमुख हुए हो। यशोधरा को नारी जाति का प्रतीक मानकर और उसके प्रति महाकारूणिक होकर भी क्रूरता की सीमा तक अकरूण बन गये है। और इसी कारण परिणय के अनंतर दस वर्षों तक गोपा गौतम का निसंतान रहना, फिर गर्भ धारण के पश्चात गोपा का निरन्तर गौतम से अलग रहना, गौतम की छाया से भी बचना आदि कारणों से गौतम के मन में गोपा के सतीत्व के कही संदेह पैदा होने से गौतम विरक्त हुए और उनके मन में त्यागमय जीवन बिताने की इच्छा जागृत हो गयी।

कारण कुछ भी हो लेकिन गौतम ने राजवैभव, आप्तस्वकीय, माता–पिता, पत्नी, राहुल सब कुछ छोड़कर विश्वशांती निर्माण के लिए लोकहित के कारण उन्होंने स्वकीयों से भी संघर्ष किया और अपना सर्वस्व बहाल किया अपना जीवन अत्यंत कष्टप्रद, यातना, वेदना सहन कर बिताया।

जिसप्रकार संगीतपर आसक्त होकर मृग अपना जीवन संकट में डाल देता है, आमिष को भूलकर मच्छलियाँ लोहे का फाँस खा लेती है उसीप्रकार ऐहिक सुख से दुःख की निर्मिती होती है इसलिए गौतम ने ऐहिक सुखों का त्याग किया है। इतना ही नहीं तो गौतम ने तन ढकने के लिए जितने कपड़ो की जरूरत होती है उतने ही वस्त्रों का आग्रह किया, राजपुत्र के कपड़े भी अपने साथी के पास देकर घर भिजवाये थे। सुंदर बाल भी उन्होंने काट डाले थे। इतना सब त्यागकर गौतम ने उनतीसवे वर्षो में हाथ में भिक्षापात्र, गिरवी वस्त्र पहनकर परिव्रज्या ले ली। जग के इतिहास में गौतम सचमुच महान त्यागी व्यक्ति है। आजतक गौतम जैसा त्यागी व्यक्ति, योगी, महापुरूष कोई नहीं है और न हि आगे बनने की संभावना है।

बिम्बसार ने गौतम के त्याग के बारे में कहा है कि –

सुख त्यागे स्वामित्व त्याग दे।
पर क्या निज व्यक्तित्व त्याग दे?
कैसे यह सम्भव है, कोई?
सब अपना दायित्व त्याग दे।[10]

8. <u>हिंसा–अहिंसा के प्रती बुध्द के विचार :–</u>

गौतम हिंसा पर अहिंसा का विजय शाबित करना चाहते थे। गौतम के विचार से मनुज ने किसी भी प्रकार की हत्या, हिंसा नहीं करना चाहिए। सभी के साथ अच्छाईसे पेश आना चाहिए। हिंसा को अहिंसा से क्रोध को प्यार से जीतना चाहिए। बुध्द ने यज्ञविधी ने पशुबलि प्रथा अयोग्य मान ली है। भगवान बुध्द की अहिंसा उनके मध्यम मार्ग के अनुसार है। बुध्द ने अहिंसा को एक नियम न मानकर उसे एक तत्व या जीवन की पध्दती कहकर उसका विवेचन किया गया है। अहिंसा को एक तत्व कहने की दृष्टि में बुध्द की दूरदृष्टी प्रत्ययास आ जाती है कि तत्व में कालक्रमानुसार परिवर्तन करने की स्वायत्ता होती है। परंतु नियम में परिवर्तन करने की स्वायत्ता नहीं होती।

डा.जगदीश गुप्तजी का खण्डकाव्य बोधिवृक्ष में बुध्द की अहिंसा का उद्घाटन मिलता है। "कृशा" इस कविता में गौतम ने अहिंसा को एक आस्था के रूप में माना है।

"आप रहे निश्चित, न आरोपों से भर मे।
मैं सब क्षात्र-धर्म अपने में उदित पा रहा।
उनकी उष्मा से भी मानस उदित पा रहा।
शान्ति, अहिंसा पर फिर भी है आस्था मेरी।
दोनों में अविरोध देखने में क्यों देरी।[11]

गौतम भाषा की कठोरता के बजाय कोमल भाषा का होना अधिक पसंद करते है। वे अहिंसक भाषा का आयोजन को एक नूतन परिभाषा मानते है।

कोसल प्रदेश में अंगुलिमालनामक कपटी मनुष्य रहता था। उसने अपने कारनामे से सभी ओर आतंक फैला दिया था। राह में अटके, भटके हुए लोगों को वह लुटता-पाटता था। इतना ही नहीं तो वह उनके हाथो की अँगुलियाँ काटकर उससे बहते रक्त को चाटता था। और कटी अँगुलियों की माला में पिरोता, कभी कमर में बाँधता या तो कभी गले में ढोता था। ऐसे अमानुष कृत्य वह करता था। इससे कोसल की जनता भयभीत हो गयी थी। एक दिन उसी पथ से गौतम जा रहे थे। अंगुलिमल ने उन्हें रोकने की कोशिश की लेकिन तथागत रूके नहीं झपटा-झपटी होने के बाद भी वह विचलित नहीं हुये तो इससे अंगुलिमाल साशंकित हो गया और उसे दिव्यशक्ति का एहसास हुआ। स्वयं बुध्द ने हाथ सामने रखकर अँगुलियाँ काटने को कहा ओर माला गूँथने को कहा और उसे सिर भी देने का कबूल करते है इससे वह बुध्द के चरणों पर झुक गया। अपने आप को कोसने लगा इसमें बुध्द के चरित्र के अहिंसा का दर्शन हो जाता है। बुध्द के कारण अंगुलिमाल जैसे हिंसा तत्पर दस्यु की परिणति भिक्षु में हो जाती है । जैसे –

हिंसा के कदर्म में धँसकर
डूब गया सिर तक सन बैठा।
अब यह सिर अर्पित करता हूँ।
यही मेरू होगा माला का।
लगा काटने शीश खड़ग से।[12]

9. **व्यक्ति स्वातंत्र्य के प्रती बुध्द के विचार :-**

डा. जगदीश गुप्तजी कहते है कि जिसकी महिमा भारत में अनादिकाल से प्रतिष्ठित उस त्यागमय जीवन को एक प्रकार की चिढ़ मानते है। अहिंसा का अपर्याप्त मानकर वह हिंसा का आक्रमक मार्ग अपनाने की प्रेरणा देती है। व्यक्ति ओर व्यक्तिस्वातंत्र्य की बात को ही अपराध मानती है। अन्तर्राष्ट्रीय संदर्भो में मानवता के उध्दार के नामपर स्वार्थ-साधन और दूसरों की स्वतन्त्रता का राजनैतिक तर्कों से अपहरण करते हुए अपनी प्रभुता का प्रसार ही जिसकी प्रवृत्ती हो गई हो ऐसी तथाकथित जनवादी सत्ता संसार में सत्तावादी लोग ही उत्पन्न करते हैं।

नयी कविता ने जिस नये मनुष्य की अवधारणा को अपनी प्रखर शक्ति से मूर्त करने का संकल्प किया वह उग्रपंथी राजनैतिक मतवादों तथा उसके व्यापक अनैतिक आचरणों की चपेट कुछ धूमिल होता जा रहा है। उसमें वैचारिक स्वातन्त्र्य की जो आधारभूत कल्पना सन्निहित रही है उसे उत्तरोत्तर निरर्थक और वाजवी सिध्द करने की चेष्टा की जा रही है। उसके स्थानपर दलीयता, प्रचारात्मकता तथा अवसरवादी समीकरण पनप रहे हैं। जिनसे मनुष्य का सत्व झूठा पड़ता जा रहा है। पाशविक शक्तियाँ आकर्षक तर्को से मानवता को अपदस्य करती जा रही है। भय और आतंक के वातावरण में प्रतिवाद को अपराध समझा जा रहा है। सांस्कृतिक चेतना को जिस रूप में विकसित किया है उसमें वैचारिक स्वातन्त्र्य और आत्मोन्नतिकारक सदाचार को जन्मसिध्द अधिकार समझा गया है। धर्म को सम्प्रदाय से कहीं अधिक ऊँचे स्तर पर प्रतिष्ठित करते हुए उसे मनुष्यता का सर्वप्रेरक स्त्रोत माना गया है। अतिवादों के बीच मध्यमार्ग का अनुसरण प्रत्येक प्राणी के भीतर सम्यक् सम्बोधि प्राप्ति की आकांक्षा का अन्वेषण, व्यक्तिगत स्तर पर त्यागमय मर्यादित आचरण, गणतन्त्रात्मक पध्दति के साथ संघ-सम्पत्ति की कल्पना तथा महाकरूणा से मानव मात्र का सन्त्रास का निवारण है। मनुष्य की सुप्त अन्तश्चेतना को जगाकर उसके विकास की समस्त सम्भावनाओं को उद्घाटित करने का संकल्प बुध्द के द्वारा डा. गुप्तजी ने किया है।

10. **मानवतावाद और गौतम बुध्द :-**

गौतम बुध्द मनुष्यों के शास्ता थे। परन्तु सबसे पहले वह मानव थे। मनुष्य से बढ़कर देवता बनता है - यह प्राचीन मान्यता थी। आज भी हम मनुष्यत्व के ऊपर देवत्व की बात कहते हैं। परन्तु तथागत ने इस क्रम को उलट दिया। उन्होंने कहा, "यह जो मनुष्यत्व है, वहीं देवताओं को सुगति प्राप्त करना कहलाता है।

"मनुस्सतं खो भिकखवे देवानं सुगतिगमन सखातं।"[13]

देवता सब सुगति प्राप्त करता है, तब वह मनुष्य बनता है। देवताओं में विलास है, राग, द्वेष, ईर्ष्या और मोह भी वहां है। निर्वाण की साधना वहाँ नहीं हो सकती। इसके लिए देवताओं को मनुष्य बनना पड़ता है। मनुष्यों में ही बुध्द पुरूष का अविर्भाव होता है, जिसको देवता नमस्कार करते हैं। अतः मनुष्य धर्म देवता–धर्म से उच्चतर है। जैसे कि विराग भोग से महत्तर है।

मानवता धर्म का उपदेश देनेवाले भगवान तथागत स्वयं मानवता के मूर्तिमान रूप थे। जगदीश गुप्त के बोधिवृक्ष में गौतम के जीवन से संबंधित कुछ प्रसंगों और घटनाओं का उल्लेख मिलता है। जिनसे उनके व्यक्तित्व में बैठी हुयी गहरी मानवता का दर्शन हमें हो जाता हैं।

भगवान के परिनिर्वाण का समय था। चुन्द कर्मारपुत्र के यहाँ भगवान ने अन्तिम भोजन किया था। उसके बाद ही भगवान को कड़ी बीमारी उत्पन्न हो गई थी। जो उनके शरीरान्त का कारण बनी। तथागत को चुन्द कर्मारपुत्र के हृदय का बड़ा खयाल था। भक्त उपासक को यह अफसोस हो सकता था कि उसका भोजन करके ही भगवान परिनिर्वाण को प्राप्त हुए। इसलिए शरीर छोड़ने से पूर्व भगवान आनन्द को आदेश देते हैं। चुन्द कर्मारपुत्र का श्रध्दा भाव शुध्द है उसे दोष मत देना और उसकी परिनिर्वाण विषयक चिन्ता को दूर करने को कहते है।

चेदी का अपराध नहीं कुछ,
मेरे ही कर्मो का फल था।
लिये अहिंसा का व्रत था मैं,
तब मैंने क्यों मांस खा लिया।
अकरणीय जो किया स्वंय ही
उसका दुष्परिणाम पा लिया।
सुनो आवुसों, सुनो भिक्षुओ।
चेदी का कुछ दोष नहीं है।
जिसका श्रध्दा भाव शुध्द हो,
उसपर संगत रोष नहीं है।[14]

गौतम का जीवन क्रियाशील था। जिस रात को उनका परिनिर्वाण हुआ और जब वह रूग्ण और कलान्त शैय्यापर पड़े हुए थे, उन्होंने रात के पहले पहर में कुशीनगर के मल्लों का उपदेश दिया, बीच के पहर में सुभद्र को ओर पिछले पहर में भिक्षु–संघ को उपदेश देकर बहुत प्रात ही महापरिनिर्वाण में प्रवेश किया।

यह अष्टांग मार्ग की परिणति,
धर्म–संघ की बनी नियति गति,
आठ भाग कर दिये गये भस्मावशेष के।
शेष रह गये चिन्ह मात्र ही उस अशेष के।[15]

गौतम बुध्द ने अपने व्यक्तित्व को धर्म के रूप में खो दिया था। यदि प्रसेनजित तथागत के प्रति अपूर्व सत्कार प्रदर्शित करता था, यदि अनेक देश और विदेश के लोग तथागत की पूजा करते थे तो इसका कारण स्वयं भगवान बुध्द की मान्यता के अनुसार धर्म ही था। तथागत उत्पन्न हो या न हो धर्म–नियामता फिर भी रहती है ऐसा उनका कहना था। इसलिए अपने बाद की शरण में ही उन्होंने भिक्षु–संघ को छोड़ा था। इस प्रकार गौतम बुध्द के चरित में मानवता नजर आती है।

11. **पूँजीवाद के प्रती बुध्द का दृष्टिकोण :–**

पूँजीवाद तो बुरा है ही क्योंकि वह व्यक्ति और समाज दोनों में अहंकार की वृध्दी के साथ–साथ हर प्रकार के शोषण को बढ़ावा देता है। पर खेद है कि आपसी फूट के कारण पूँजीवाद से सॉंठ–गॉंठ कर यह जनवाद भी संसार को युध्द के कगार पर लाने में सहायक होता जा रहा है।

"युध्द और बुध्द" नामक "शब्ददंश" की एक कविता में ही जगदीश गुप्तजी ने पहले यह प्रश्न सांकेतिक रूप से उठाया है। यथा –

चाहते नहीं यदि संस्कृति का सर्वनाश
युध्द को तिलांजली दो श्रध्दांजली –
बुध्द को ।
धर्म–चक्र के आगे नमन करो
हिंसा को त्याग दो, अहिंसा का वरण करो। [16]

बौध्द धर्म की एक महत्वपूर्ण विशेषता उसका जनवादी स्वरूप है। भगवान बुध्द इतिहास के सर्वप्रथम पुरूष हैं, जिन्होंने ''बहुजन–हित, बुहजन–सुख'' और लोक की अनुकम्पा को अपने धर्म–चक्र की धूरी बनाया। व्यापक लोक–कल्याण को ध्यान में रखकर गौतम ने न केवल धर्मोपदेश किया, बल्कि उसे समाज–निर्माण का आधार भी बनाया। मनुष्य–मनुष्य के बीच कोई जातिगत भेद नहीं है। समाज के पीडित और पद–दलित निचले स्तर को, जो किसी न किसीप्रकार अपमान और शोषण का शिकार रहा है, बौध्दधर्म ने हमेशा एक आश्वासन दिया है। जाति और वर्ण की बाधा को दूर कर सदा उसने उसके लिये ज्ञात के मार्ग को खोलने का प्रयत्न किया है। भगवान बुध्द ने अपने दूसरे शिष्यों को भी उचित सम्मान दिये। वे शिष्यों का सम्मान करते थे।

गौतम को अमीर–गरीब का भेद मान्य नहीं था। जैसे –

मेरे तन पर वस्त्र रेशमी,
औरों के तन रहें उघारे।
समासीन राजन्य वर्ग हो,
फिर और सब मारे–मारे।
यह मुझको स्वीकार नहीं था,
मेरा जीवन कलान्त हो उठा।
मेरा चित्त अशान्त हो उठा। [17]

पूँजीवाद की तरह गौतम में अहंकार कभी भी उत्पन्न नहीं हुआ तो एक मनुज होकर भी उनमें देवता के समान उनका नैतिक आचरण था।

दर्प की छाया नहीं, कंदर्प भी श्रीहीन।
भार कन्याएँ, पराजित हो पड़ी है दीन।
ध्यान केन्द्रित साधना निर्वाण का आधार।
मनुज होकर देवता के तुल्य सब आचार। [18]

12. **गौतम की करूणामयता :–**

डा. जगदीश गुप्तजी ने "हंस–प्रसंग" नामक कविता में गौतम की करूणा का चित्रण अंकित किया है कि गौतम का चचेरा भाई देवदत्त ने हंस को बाण से मारा था कारणवश वह हंस रक्त से

लथ–पथ होकर भूमिपर गिर पड़ा तो गौतम ने उस हंस को अपना लिया, पानी पिला दिया और मन ही मन में विश्वभर का सारा दुःख उमड़ने लगा। देवदत्त क्रोधित होकर हंस लेने के लिए आया लेकिन गौतम ने हंस देने को इन्कार किया। न्याय करने के लिए वे दोनों संथागार चले जाते है। लेकिन घातक से त्राता श्रेष्ठ होने के कारण न्याय गौतम के पक्ष में ही जाता है। निर्दयता पर करूणा की जय हो जाती हे। गौतम विश्व में करूणा का संचार करना चाहते हैं। किसी भी प्रकार का आघात वे करना नहीं चाहते। यथा –

शस्त्राघात न मुझसे होगा
निरपराध जीवों के ऊपर ।
करूणा का साम्राज्य बनाना है
मुझको पशुतामय भू पर।[19]

एक दिन गहन आम्रवन में श्रमणों के साथ गौतम जा रहे थे तो पाँच प्रधावित युवकोंने वार–वधू के बारे में पूछा तो उन युवकों को देखा तो वे सभी हॉफ रहे थे। करूणापूरित गौतम ने उस स्त्री का वर्णन अत्यंत सुंदर ऐसा किया लेकिन असल में वार–वधू को गौतम ने देखा तक नहीं था। उन युवकों को तृष्णा ने पिपासाकुल बना दिया था। उस तृष्णा को गौतम ने मिटा दिया और उन्होंने तथागत का स्वागत किया। इसप्रकार गौतम में करूणामयता, सहृदयता, गंभीरता, उदारता कूट कूट कर भरी हुयी मिलती है। गौतम की दयालु वृत्ती, शान्त चित्त, सरल, सीधा–साधा स्वभाव के कारण गौतम जनमानस में बसे हुये दिखाई देते हैं। गौतम ने कभी भी किसी का द्वेष मत्सर नहीं किया। गलती करनेवालों के प्रति भी करूणा और अनुकम्पा का भाव दिखाकर गौतम उसको सही मार्ग पर चलने को कहते है। गौतम स्त्री जीवन को पुरूष के जीवन से अधिक दुःखमय मानते थे, उनके स्वभाव की एक स्त्री जाति के प्रति करूणा यह प्रमुख विशेषता थी। कर्मारपुत्र के भोजन की वजह से गौतम कडी बीमारी उत्पन्न हुई। परंतु गौतम को चुन्द कर्मारपुत्र के हृदय का बड़ा खयाल था। भक्त उपासक को यह अफसोस हो सकता था कि उसका भोजन करके ही भगवान परिनिर्वाण को प्राप्त हुए। इसलिए शरीर छोड़ने से पूर्व भगवान आनन्द को आदेश देते हैं, "आनन्द ! चुन्द कर्मारपुत्र की इस चिन्ता को दूर करना और कहना, आयुष्यमन !, लाभ है तुझे, तुने बड़ा लाभ कमाया कि मेरे भोजन के कारण तथागत परिनिर्वाण को प्राप्त हुए। आनन्द ! चुन्द कर्मारपुत्र की चिन्ता को दूर करना।"[20]

बुध्द की विचारधारा अधिक गम्भीर , उदार , करूणामय और मानवता से युक्त रहीं है, भले ही आज वह प्रधान युगधर्म के रूप में ग्राहय न हो। भारतवर्ष से बुध्द धर्म स्थूल रूप से चाहे कभी निष्कासित कर दिया गया हो पर आज भी "संकल्प" में बोध्दावतारे की ध्वनि गूँजती रहती है। जो कदाचित "गीत–गोविन्द" की दशावतार स्तुती, "केशव बुध्द शरीर" से अनुप्रेरित है। बुध्द धर्म में गौतम की मूलभूत जीवन दृष्टि की गहराई एवं व्यापकता और मानव के प्रति संतुलित दृष्टिकोण अपनाने के विचार से प्रेरित है।[21]

13. **<u>नारी के प्रती बुध्द की दृष्टि :–</u>**

यशोधरा को नारी जाति का प्रतीक मानकर उसके प्रति महाकारूणिक होकर भी सीमा तक अकरूण बन गए है। परिणय के अनन्तर दस वर्षो तक गोपा गौतम का निसंतान रहना, गौतम से अलग रहना आदि कारणों से गौतम के मन में नारी जाति के प्रति क्रूर वितृष्णा भर गयी हो।

गौतम बुध्द ने नारियों के संघ–प्रवेश का सहज भाव से स्वीकार नहीं किया। अपने प्रिय शिष्य आनन्द के आग्रह को वे अन्ततः टाल नहीं सके, तो भी उन्होंने भविष्यवाणी की संघ की आयु नारी–प्रवेश के कारण क्षीण हो जाएगी। इसतरह बुध्द की नारी के प्रती दृष्टि कठोर ही दिखाई देती है। प्रथम संघ–प्रवेश में कपिलवस्तु की जो गौरवमयी नारियाँ सम्मिलित थी उनमें सिध्दार्थ की मातृश्वसा महाप्रजापति गौतमी और सहधर्मिणी भार्या और गोपा भी सम्मिलित थी। फिर भी गौतम ने भिक्षुणी संघ के निर्माण का स्वागत नहीं किया। लेकिन गौतम बुध्द ने अपने भिक्षुणी संघ में सुजाता, किसा, गौतमी, गणिका, आम्रपालि आदि नारियों को प्रवेश दिया है।

विरक्त होने से पहले गौतम ने यशोधरा को अनेक छोटे–छोटे कारणों को लेकर सताने का प्रयास किया है। गौतम और यशोधरा एक सामान्य आदमी की तरह राग–अनुराग की बाते, रूठना, मनाना, झगड़ना आदि जीवन में घटित हो गया है। गौतम बुध्द नारी को महत्वाकांक्षी मानते है यथा–

नारी है लौकिक एषणाओं की
मूर्तिमान परिभाषा
कितना भी कहो,
तुम भी तो नारी हो
महा –महत्वाकांक्षी

तुम भी तो चाहती हो
प्रभुता, प्रभुता, प्रभुता ।
राहुल के जन्मते ही
कहो, क्या तुम्हारा मन
वैसे ही जुडा रहा
मेरे मन से
जैसे पहले था?[22]

स्त्री जाति के प्रती करूणा का भाव भी गौतम की प्रमुख विशेषता थी। पटाचारा जैसी स्त्री साधिका बन गई। गौतम की नारी विषयक धारणा बनाने में गोपा का प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से विशेष योग रहा है। परंतु नारी के विषय में बुध्द की दृष्टि संकीर्ण हैं, और विगत युग की सीमा से ग्रस्त दिखायी देती है। जिस में प्ररूष प्रधानता अधिक है। गौतम द्वारा भिक्षुणियों के लिए जो कठोर नियम बनाये गये वे इसके प्रमाण है।

थेरी गाथाओं में अनेक प्रतिवाद का स्वर कहीं उभरा हो तो मुझे ज्ञात नहीं। सभी थेरियाँ बुध्द शरण पाकर कृतार्थता का अनुभव करती हुई दिखाई देती हैं जिससे सिध्द होता है कि या तो उन नियमों में कठोरता करूणाभाव की कोमलता से वेष्ठित होने के कारण चुभती नहीं थी या उस युग में नारी जीवन का सन्त्रास इतना विषम था कि बुध्द का समभाव उस कठोरता के बाद भी उन्हें प्रिय लगता रहा।[23]

14. बुध्द का अद्वैतवादी चिंतन :-

अद्वैतवाद चिन्तन पर बुध्द की मान्यताओं की छाप अनेक रूपों में परिलक्षित की गयी है। गौडपाद से होता हुआ यह प्रभाव शंकराचार्य के मायावाद तक पहुँचा और उन्हें समादर के साथ अनादरपरक प्रच्छन्न बौध्द की उपाधि भी दी गयी। पदम् पुराणकारने इसी कारण मायावाद की निन्दा की है कि बौध्द मत से प्रभावित हुआ –

"मायावदमसच्छास्यं प्रच्छन्न बौध्दमेवच।"[23]

कुछ दार्शनिको ने इस बात का प्रतिवाद भी किया है। अद्वैतमत वे बौध्दमत का कोई प्रभाव स्वीकार

नहीं करते पर बुध्द के प्रभाव को सर्वथा नकारना संभव नही है क्योंकि वह एक शक्ति के रूप में सामने आया था। ब्राम्हणवाद के यज्ञ–अश्व की वल्गा उसने लव–कुश की तरह थाम ली और अन्ततः एक सीमा तक विजयी भी हुआ।[24]

बुध्द–वचन किसी को जन्म से ब्राम्हण मानने का उत्कट विरोध करते हैं। उनके अनुसार अपरिग्रही, त्यागी, निरासक्त, विरक्त, निरहंकारी, बहश्रुत, शीलवान, अपीडक, दयावान, प्रज्ञावान, असंग्रही तथा अयाचक आदि विशेषज्ञो से विभूषित किया जानेवाला गुण–कर्म–स्वभाव से श्रेष्ठ व्यक्ति ही ब्राहमण कहलाने का अधिकारी है। धन संग्रही लोभी, याचक और पुरोहिती करनेवाला ब्राहमण घर में जन्म लेनेवाला व्यक्ति ब्राहमण नहीं है। ये तेजस्वी धारणाएँ कबीर आदि सन्तो की वाणी में उसी तेवर के साथ प्रस्फुटित हुई और भारतीय समाजपर उनका गहरा प्रभाव भी पडा।

15. <u>क्षुद्र के प्रती बुध्द का दृष्टिकोण :–</u>

बुध्द–युग में प्रवाहित कारूण्य धारा का वास्तविक सामाजिक रूप समस्त मानवीय–अमानवीय सन्दर्भो के साथ प्रत्यक्ष हो उठता है। मानवता का कितना विशाल समुद्र उस काल में भारत के पूर्वांचल से उमड़कर देश–देशान्तर तक लहराया था इसका आभास मात्र किसी को चकित और चमत्कृत करने के लिए पर्याप्त है। गणतन्त्रीय पध्दति का क्षुद्र जातीय संघर्षों में टूट–टूटकर बिखरना आज के भारत की स्मृति जगाता है किन्तु साथ ही तथागत के रूप में आत्मिक उन्नयन के आलोक पुरूष "अत्तदीप" के समुदय से मानवता के विजय के प्रति आश्वस्त करता है। निरन्तर चिन्तन मनन से मानव की जो पहचान भारत ने अर्जित की है वह साधार है और नये मनुष्य की अवतरण प्रक्रिया में उसका योगदान होगा इसमें कोई सन्देह नहीं है।

बुध्द के प्रभाव से यज्ञ–पशु पिष्ट–पशु बन गए। रक्तमय बलिप्रथा वैष्णव प्रभाव ग्रहण करती हुई मानवता और समता को सर्वोपरि स्थान मिला। जन्म से जाति–वर्ण की मान्यता खंडित हो गयी। बौध्दमत ने भारतीय संस्कृती के विकास में आत्मा और ईश्वर का प्रतिवाद करके तथा विज्ञानवाद और प्रज्ञावाद का प्रसार करके अभूतपूर्व योग दिया जो आज भी महत्व रखता हैं।

शुद्र वर्ग को धर्म में प्रवेश देकर आध्यात्मिक क्षेत्र में उन्होंने इस प्रकार जो क्रान्तिकारी परिवर्तन किया उसकी चेतना शैव और वैष्णव मत के विविध रूपों, लिंगायतों, महानुभावों तथा

रामनंदियों में स्पष्ट परिलक्षित होती है। इसप्रकार क्षुद्र के प्रती गौतम की दृष्टि सहानुभूतियुक्त उनको भी आदर सम्मान देनेवाली है। गौतम बहुजनहितवादी थे। अपने जीवन को बहुतों के हित के लिए मानते थे। उनके जीवन की छोटी–से–छोटी घटना में यह भावना मिलती हैं।

डा.जगदीश गुप्तजी ने गोपा और गौतम इस संवाद काव्य में परम्परा के अनुसार चले आये गौतम का वर्णन महामानव योगी पुरूष में न कराकर एक सामान्य आदमी के रूप में चित्रित किया है। जगदीश गुप्तजी ने "गोपा गौतम" इस संवाद काव्य की निर्मिती आधुनिक दृष्टि से की है। जीवन के सर्वथा अछूते प्रसंगों को आधुनिक दृष्टि से मनोविज्ञान की तर्कसंगत यथार्थ मनोभूमिपर, सृजनशील कल्पना के सहारे इस काव्य का निर्माण किया गया हैं। इसमें हमें अपने अपनी दृष्टि से बुध्द चरित की विशेषता नजर आती है वह निम्नांकित हैं ।

गौतम की गृहस्थी :–

गौतम मानव थे, जैसे मानव इस धरती पर चलते, फिरते, साधारण कामकाज करते, गृहस्थी बनाते और अपने बाल–बच्चों को पालते पोसते दिखाई पड़ते हैं। वैसे गौतम भी सामान्य मानव थे। उन्होंने भी यशोधरा के साथ विवाह किया था। प्रचलित विधी के अनुसार गौतम के सम्मुख वधू परीक्षा के लिए अनेक राज–पुत्रियों का आयोजन किया था। लेकिन उसमें से एक पर भी गौतम का उत्साह बढ़ा नहीं जैसे कि –

नहीं किसी की ओर अभी तक
गयी विरत सिध्दार्थ – दृष्टि जो,
सहसा लगी खोजने उत्सुक
आगत कोई नहीं और तो।[25]

गौतम तो परिणय के संबंध में असमेंजस में डुबे थे। तो एक सहचरी लाज से भरी सुन्दरी अनुनय करती हुयी आयी तो सारा वातावरण ही बदल गया। प्रथम दृष्टि में एक दूसरों में स्नेहपाश में बाँध लिया और यशोधरा और गौतम इस नव–दम्पति का समर्पण हो गया। राग–अनुराग की सभी बाते उनमें भी हो गयी जैसे –

झुका रहा वह शीश अवश
सिध्दार्थ – वक्ष पर

तरूणाई ने
तरूणाई में
बाहु पाश से
दिया स्नेह भर।
अधरों में जागा कम्पन
जरा श्वास–श्वास को
मिली उष्णता
घुलते रहे दृष्टि में चुम्बन
प्राणों में उभरी सतृष्णता।[26]

परिणय की सभी विधियाँ भी पूरी हो गयी। सामान्य आदमी की तरह गौतम ने भी परिणय की क्रीडा का स्वाद लिया है। संसार सुख का भोग लिया है, संसार गृहस्थी का आनंद भी लिया लेकिन न जाने क्या गौतम ग्राहस्थिक जीवन विमुख हो गए थे। गौतम का विमुख होने का कारण यशोधरा ही है क्योंकि परिणय क्रिडा खेलने के बाद आदमी विरक्त हो जाता है, संसार–सुख से छुटकारा पाना चाहता है तो उसमें यशोधरा का सतीत्व, पत्नीरूप ही कारणभूत हो सकता है। गौतम को यशोधरा के द्वार से वापस आना पडा था। यशोधरा का दस वर्ष तक निसंतान रहना आदि बातों के कारण गौतम, यशोधरा पर बन्ध्यत्व के आरोप का सामना करना, गौतम को यशोधरा के कक्ष में प्रवेश न देना आदि कारणों के कारण गौतम के चरित में गृहस्थी की विमुखता दिखाई देती है। गौतम कुछ बरस तक संसार में आसक्त थे लेकिन बाद में विरक्त हो गये हैं।

संकोची वृत्ती :–

सामान्य आदमी की तरह जो अपनी पत्नी ने अन्य पुरूषों के साथ बोलचाल की बाते की तो उसपर अनेक प्रकार के आरोप लगाकर उसे सताते रहते है। उसी तरह गौतम ने भी यशोधरा अन्य पुरूषों से घिरी रहने की वजह से उसपर भी आरोप लगा लिया। अपनी भार्या को वह पूरी–तरह से पहचान नहीं पाये। वैसे तो पत्नी जीवन के सुख दुख की क्षण–प्रतिक्षण सहचरी होती हैं। लेकिन गौतम ने सभी नारियों को समान ही माना। जैसे कि –

नारी नारी में
कुछ भेद नहीं लगता क्या ?

सबको एक जैसे क्यों मानते हैं?
नारी की अस्मिता को इतना ही जानते हैं?[27]

गौतम नारी को लौकिक एषणाओं की मूर्तिमान परिभाषा मानते है। उसे महा–महत्वाकांक्षी मानते हैं। सन्तति के बाद पत्नी का पतीपर होनेवाला प्रेम कम हो जाता है, पति आकर्षण की धार कम हो जाती है ऐसा वे मानते हैं। गौतम अपनी भार्या से आत्मविश्वास नहीं पाये है। यशोधरा के पाँव भारी होने के वजह से उसको यातनाएँ हो जाती थी इसलिए घरवालों ने यशोधरा को किसी भी प्रकार का कष्ट न हो इसलिए गौतम को उसके कक्ष में जाने को मना किया था। तो गौतम कहते है कि –

नहीं गोपे !
फिर से कुरेदो मत मेरी व्यथा ।
गोपन ही रहने दो उसकी कथा ।
अवसर ही कहाँ दिया तुमने उस बात ।
बनते ही पिता, मुझे घर से निर्वासन दे दिया गया।[28]

राहुल के अस्तित्व पर गौतम शक लेते है। अपनी भार्या, पुत्र का उन्हें कुछ भी स्वाभिमान नहीं हैं अपनी अहंता ही वे सर्वोपरि मानते हैं। गोपा को बार–बार दुतकारने पर भी गौतम मौन ही रहते थे। दुष्यन्त की तरह गोपा के साथ रिश्ता भी भुल चुके थे। उन्होंने अपने वैयक्तिक संदर्भो को कष्ट डाला था। अपनी भार्या के कक्ष में जाने से इन्कार करने के कारण भार्या को जी चाहो करती रहने को कहते हैं। अपने पतिरूप का रोब उसपर नहीं जमाते। मात्र वे गृहस्थी को छोड़कर जाने की कुछ सार्थक पाने की अनुमती भी लेते हैं। –

जितना गृहस्थी में रहना था,
रह चुका ।
अब मुझको जाने दो।
कुछ सार्थक पाने दो।[29]

गौतम अपनी पत्नी को दूर मन से मत रहने को भी कहते है और यशोधरा पर होनेवाला गौतम का अधिकार की भी याद दिलाते हैं। अधिकार नहीं होता तो वे यशोधरा को शपथ खाकर

गर्भ छिपाने की बात न कहते जैसे --

इस नये संदर्भ में भी
आज मेरी शपथ खाकर
कहो गोपे ।
किस लिए तुमने छिपाया गर्भ मुझसे
मैं पिता हूँ, कभी कोई सूचना दी गयी मुझ को ?[30]

पिता होने के नाते गौतम को सब कुछ मालूम होना चाहिए। ऐसा समझते है वैसे तो पति–पत्नी का अटूट रिश्ता होता है। असल में यशोधरा ने गौतम को यह बात बताने की बहुत कोशिश की थी। यह याद दिलाने पर गौतम भी ईमानदारी के साथ यशोधरा के प्रस्ताव को कबूल कर लेता हैं।

गौतम के मन में नारी के प्रती उपेक्षा का भाव संचलित हैं। गौतम में क्रूरता भी है। लांछन का सारा दंश अकेली यशोधरा को सहना पडा। गौतम के विरागी मन को, पौरूष को जागृत करने के लिए यशोधरा को औरों की ओर होने का नाट्य भी रचना पडा ताकि गौतम का पौरूषत्व जाग जाय। यशोधरा की जीत हुयी लेकिन गौतम ने दिवस में भी यशोधरा के कक्ष से बाहर जाना छोड़ दिया इसमें गौतम की नारी लोलुपता ही दिखाई देती है। फिर भी गौतम अनुभव की गहन सीमापर भासित होकर सचल–अचल बन गया, जिस प्रकार गतिमान तेज स्थायी बिम्ब हो जाता है उसी प्रकार गौतम भी भीतर से सचमुच बदल गया।

आत्मीक उत्थान में गौतम गृहस्थी को बाधा समझते है और अपना एक मात्र काम एकाकी चिंतन, त्याग, तपस्या मानते है। गौतम राहुल को एक प्रकार की बाधा ही मानता है। खुद का अस्तित्व उनमें होने पर भी यशोधरा का अधिकार उस पर बताता है। इस में उसका बडप्पन भी नजर आता है। नारी के विषय में पुरूष की अहन्ता दुर्निवार है यह गौतम नहीं मानता तो केवल संकल्प–शक्ति के चाहने को कहता है। नारी के प्रती गौतम के मन में कोई भी आस्था नहीं है। सीता की अग्निमय परीक्षा में उसका विश्वास नहीं है। जैसे –

मानता हूँ,
नारी के साथ को
ऐसे उपायों से,

जानना असम्भव है,
भले लोक–चित्त में
इनके प्रति आस्था हो,
आज भी ।[31]

प्रज्ञा को ही गौतम पथ–दर्शक मानते हैं। संकट का साथी विवेक को ठहराते है।

गौतम को "आर्यपुत्र" होने का भी बोझ लगता है, उस बोझ को भी त्यागना चाहता है। सहज उक्ति की ही वे अभिलाषा करते है।

वात्सल्यमयी :–

गौतम राहुल के जन्मकाल में बाधित ठहराये गये थे। लेकिन उन्होंने यशोधरा के हाथों से राहुल को लेकर दुलारा है उसे अपनाया भी है। राहुल को चुमा भी है। देरतक वह बार बार जागने पर उस पर पहारा भी दिया है। एक पिता होने के नाते उसे कभी–कभी डाँटा भी हे। इससे गोतम में स्थित वात्सलयमयता का दृष्टिक्षेप हो जाता है। जैसे –

जन्म काल में
थोड़ा बाधित होकर ही सही,
क्या मेरे हाथों से छीनकर
उसको दुलारा नहीं आपने ।[32]

परिवर्तनशीलता :–

गौतम व्यक्ति में, प्राणों की हलकी या गहरी आसक्ति में प्रतिक्षण परिवर्तन मानता है। सारे पदार्थो में जो एक चेतना रूप, प्रज्ञा रूप बोध है वह जो सबकुछ अनुभव करके भी हमेशा निर्विकार बना रहता है। और हमेशा गौतम चिन्तन में ही डुबे रहते थे। परिवर्तन क्रम के अनुसार आज नहीं तो कल यह सबकुछ निरर्थक होनेवाला हैं। परिवर्तन ही इस क्षणभंगुर सृष्टि का सुस्थायी धर्म हैं। इसलिए व्यक्ति में मन में किसी भी प्रकार की आसक्ति नहीं होनी चाहिए। इसलिए परिभ्रमित मन कोरोककर गौतम ने दुखमय संसार से परित्राण का दृढ़ निग्रह कर अपना मार्ग अपनाया हैं।

सम्यक् दृष्टि :–

गौतम सृष्टि को सही दृष्टि से देखते है कि वह सर्वथा तटस्थ होनी चाहिए। दुरूह अन्तराल ने यशोधरा और गौतम के बीच जो पंजे जमाये है उसे गौतम सारे अस्तित्व को दबोछनेवाला कीचक जैसा मानते है। इसलिए गोपा को, कृष्ण की तरह दुखरूपी यमुना–दाह में धँसकर नाथ सकने के लिए शक्ति देने की अभिलाषा करते है ताकि दुख का हरण करने में कामयाब हो सकूँ। पीडीत जनता को मुक्त करने के लिए अपना योगदान दूँ।

जनता का अभिभावक :–

गौतम राजतन्त्र को एक सेवा के नाम किया जानेवाला एक बुरखा मानते है। राजतन्त्र में केवल आशा रखने के लिए अधिकार होते है, जो कठिनता निवारित हो सके ऐसे राजदण्ड भी घोषित कीये जाते है लेकिन स्वार्थी लोगों की श्रृंखला इतनी बडी होती है कि आम जनता तक कुछ भी नहीं पहुँचने देती। उत्तम प्रती के अनाज, उपयोगी योजनाएँ धन–साधन सब पहले ये दांभिक प्रवृत्ति के लोग हासिल कर लेते है। और अन्त में बची-खुची जुठन पर जनता को समाधान मानना पड़ता है। राजनीति में स्वार्थी लोग राजनीतिज्ञ, ठेकेदार, साहूकार आदि की जिनके हात में सत्ता होती है वह लोग अपने दोष पर परदा डालकर उसके छिपाते है और अन्य लोगों पर दोषारोपण करते हैं। इसलिए राज–तन्त्र में भी विषमता होती है ऐसा वे मानते है। एक को ऊँचा और दूसरे को नीचा माना जाता है। यह ऊँच नीच का भेदभाव गौतम को मान्य नहीं है। वे सभी को समान रूप से देखना चाहता है। राजतन्त्र में जनता ही सबकुछ होने के कारण उन्हें उचित न्याय, उचित सम्मान जनता की तरफ सही दृष्टि, उचित अधिकार की प्राप्ति उन्हें होती चाहिए ऐसा गौतम सोचते है। इससे जनता के प्रती गौतम के मन में होनेवाला उत्कट प्रेम दिखाई देता है।

शासकों के प्रती घृणा करनेवाला :–

गौतम को अपने गणतन्त्र में यह शासकों की वृत्ति का परिचय हुआ हैं। वे कहते है कि असल में प्रजा का अच्छे कार्य में अधिक सहभाग होता है, राजा या शासक निमित्त मात्र होता है लेकिन यश का श्रेय राजा और दोष का आरोप प्रजा पर यह काहे की नीति है और जो भी विरोध करने की कोशिश करता है तो उसे कडी से कडी सजा दी जाती है। जैसे –

अपने गणतन्त्र में
यश सारा शासक को मिलता है,
दोष सब प्रजा के सिर जाता है
जो भी विरोध करे स्वार्थियों का
वहीं अयश पाता है।[33]

विरोध को हमेशा सत्ताधारि विभाजित करते रहते है। अपराधी निर्भय लोग राज-पुरूषों की स्निग्ध छात्र-छाया में आश्रय पाते है। तो दंभिक लोग निरपराध लोगों को अपनी कारा में बंदी बनाते है। उनकी अवस्था मृत्यू से भी बढ तर बना देते हैं। वे पग-पग पर उनको उपायन देते है। कोई भी उन लोगों को अनुचित लाभ नहीं देता, अपने स्वार्थ के अलावा कुछ भी उन्हें सूझता नहीं। स्वराज्य में भी उसकी दयनीय अवस्था है। सभी ओर हिंसाभाव दिखाई देता है। जनहित के लिए दूषित शासनव्यवस्था को भी त्यागकर मन की दुर्बलता को जीतकर जीवन का अभिप्राय कर लेना सुलभ माना है।

यशोधरा के साथ सहानुभूति भी रखना हे, वे कबूल करते है कि उनके ही कारण यशोधरा को क्लेश हुआ, बंधन दृढतर हुआ, मुक्ति-भाव का बिखरना, छितरना भी गौतम नहीं चाहते थे। जिसतरह दीप बुझ जाता है लेकिन ज्योति का त्राण वहीं होता है। सब दुःखों से वही मुक्ति और निर्वाण है। गौतम ने जरा, मृत्यू, रोग से जर्जर कायाएँ देखी है। पाप-शाप की कलुष-कलंकित छायाएँ देखी हैं, नर, नारी, अपुरूष, बाल-वृध्द दीन-हीन अन्त्यजकुलीन हो सभी को दावानल में जलना ही पडता है। काल ने आज तक किसी को भी मुक्त नहीं किया। हर प्राणी को ग्रास बनाकर मुक्त किया है। इसके लिए राहुल, यशोधरा खुद स्वयं गौतम भी अपवाद नहीं रहे सभी को आत्म-सत्य का अन्वेषण करना चाहिए।

गौतम ने यशोधरा को अच्छा सिध्दार्थ बनने का वचन दिया था। वह भी वचन निभाया है, गौतम ने अच्छा पुरूष बनकर भय, क्रोध का दमन किया, अपने इंद्रियों पर अधिकार जमा लिया। लोभ, मोह काम को भी अपने वश में कर लिया और मुक्ति पा ली है। गौतम के वैराग्य-भाव की निर्मल जलधारा में ममता को कोई स्थान नहीं है। गौतम का निर्वाण वह एक बिन्दु है कि जहाँ क्षणभंगुर संसार का सभी कुछ निःशेष हो जाता है। जिसप्रकार मन परिवर्तित होता है, दीपक की

ज्योति की तरह बुझकर विलीन हो जाता है। दर्शक भी अन्ततः दृश्य में समा जाता है। तो गौतम स्वाभिमान के साथ अपनी बीवी से कहता है कि तुम्हारे साथ साथ की धरती के साथ भी एक अनोखा ही रिश्ता हैं। मैं सभी का हूँ। गौतम को सांसारिक माया-मोह त्याज्य हैं उन्होंने अपनी करूणा की भूमिपर सब का कल्याण चाहा हैं। उन्होंने जो संकल्प किये थे उसका भी उन्होंने अंततक पालन किया है। जैसे –

मेरा संकल्प. था–
जीवन का मूल धर्म
मुझसे प्रवर्तित हो चक्र सा
नहीं चक्रवर्ती बना ,
मैं तो बस धर्म चक्र का ही प्रवृत्ती हूँ।[34]

यशोधरा के बारे में गौतम साशंक रहते थे। उनका मन असन्तुष्ट था, किन्तु उन्होंने अपने आत्मजों का भी त्याग किया है। उनकी वत्सलता को भी ठुकरा दिया। दुख की निर्मिती तृष्णा के कारण होती है। इसलिए तृष्णा को मिटाकर दुख का सामना किया है। जगतहित के लिए गौतम ने अनेक उपदेश देकर उन्होंने उनतीस वर्ष के बाद का जीवन लोकहित के लिए अर्पित कर जग का कल्याण, सही मार्ग देने का प्रयास किया है। मृत्यू के बारे में भी लोगों को उन्होंने उपदेश दिया है कि इस संसार में हर एक मानव की मृत्यू होनेवाली है इसलिए रूक्ष नहीं होना चाहिए तो अपना जीवन कल्याणप्रद मानकर उसे बीता देना चाहिए।

निष्कर्ष :–

डा.जगदीश गुप्तजी ने "बोधिवृक्ष" और "गोपा–गौतम" इन दो खण्डकाव्यों में गौतम का चरित्र बहुत ही सुंदर ढंग से वर्णित किया है। जगदीश गुप्तजी ने गौतम को एक सामान्य आदमी के रूप में चित्रित किया है। तो सामान्य आदमी में घटित होनेवाली सभी हास–विलास की बाते उनमें भी दिखाई देती है। गौतम के द्वारा जगदीश गुप्तजी ने राजतन्त्र, गणतन्त्र में होनेवाले काले–बाजार का दर्शन कराया है। गौतम का त्याग, उसकी करूणा, जनता के प्रती होनेवाला प्रेम, दुख का हरण, सर्वधर्म समभाव, ऊँच–नीच का भेट मिटाना आदि के द्वारा गौतम ने उपदेश देकर समाज प्रबोधन किया है। आज भी गौतम के वे उपदेश समाज की तरफ देखने की एक नूतन दृष्टि प्रदान करने में सफल हो गये है। इस तरह गौतम का चरित्र महान, त्यागी, योगी, भोगी है। सचमुच वे सिध्दार्थ है।

संदर्भ सूची :-

1. डा.जगदीश गुप्त "गोपा गौतम", वाणी प्रकाशन, 61 एफ कमलानगर दिल्ली 110 007, प्रथम संस्करण 1984, पृ. मुखपृष्ठ
2. डा.जगदीश गुप्त, "बोधिवृक्ष" , वाणी प्रकाशन, 4697/5, 21 ए दरियागंज, नई दिल्ली 110 002, प्रथम संस्करण 1987, पृ. 7
3. सर्वपल्ली राधाकृष्णन, आजकल वार्षिक अंक 1656, बौध्दधर्म के 2500 वर्ष, पृ.23
4. डा.जगदीश गुप्त, बोधिवृक्ष, पृ. 44
5. वही, पृ. 44
6. वही. पृ. 23
7. वही, पृ. 80
8. डा.भीमराव आम्बेडकर, "बौध्दधर्म ही मानवधर्म", पृ. 42
9. डा.जगदीश गुप्त, "गोपा गौतम", पृ. 8
10. डा.जगदीश गुप्त, "बोधिवृक्ष", पृ. 56
11. डा.जगदीश गुप्त, "बोधिवृक्ष", पृ. 28
12. वही, पृ. 71
13. भरतसिंह उपाध्याय, "बोधिवृक्ष की छाया में" द्वितीय संस्करण, पृ. 21
14. डा.जगदीश गुप्त, "बोधिवृक्ष", पृ. 74
15. वही, पृ. 76
16. वही, पृ. 9
17. वही, पृ. 66
18. वही, पृ. 63
19. वही, पृ. 28
20. भरतसिंह उपाध्याय, "बोधिवृक्ष के छाया में" पृ. 23
21. डा.जगदीश गुप्त, "बोधिवृक्ष", पृ. 8
22. डा.जगदीश गुप्त, "गोपा गौतम", पृ. 52–53
23. डा.जगदीश गुप्त, "बोधिवृक्ष" , पृ. 10

24. वही, पृ. 11
25. डा. जगदीश गुप्त, "गोपा गौतम", पृ. 25
26. वही, पृ. 31
27. वही, पृ. 52
28. वही, पृ. 53
29. वही, पृ. 60
30. वही, पृ. 64
31. वही, पृ. 93
32. वही, पृ. 97
33. वही, पृ. 109
34. वही, पृ. 123